एक आदिम रात्रि की महक

डॉ. गौरी त्रिपाठी

प्रेमचंद और रेणु की कहानियों के पार्श्वभूमि में जो गाँव आते हैं वे लगभग एक जैसे ही हैं। बावजूद इसके कि इन दोनों रचनाकारों की समयावधि में तीन दशक का अंतराल है, लेकिन उस दौर के इन तीन दशकों में सामाजिक या आर्थिक तौर पर कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ है। राजनीतिक सत्ता के केंद्र जरूर बदले लेकिन उसका असर गावों में बहुत ही कम दिखता है।

आज के समय में परिवर्तन की गति जितनी तीव्र है और जिस तेजी से हमारा यथार्थ बदलने लगा है जीवन और समाज को लेकर वैसी गतिमयता आज से छः-सात दशक पहले के उस दौर में नहीं थी। इसलिए यह मानने में कोई गुरेज नहीं कि प्रेमचंद और रेणु अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी शैली में औपनिवेशिक भारत के सीमांत पर बसे एक ही गांव की कहानी कहते हैं। इन गांवों में उतना ही अंतर है जितना बनारस और बिहार में। लेकिन प्रेमचंद की कहानी सुनते हुए आपको औपनिवेशिक भारत में किसानों के शोषण, उनकी बदहाली और टूटते विखरते गांव दिखाई देते हैं।और जब आप रेणु को पढ़ते हैं तो उन्हीं चिर परिचित अभावों के बीच चरित्रों के जीवन में उल्लास का मनोरम संगीत सा सुनाई देता है। जीवन यथार्थ का वैसा करुण रुदन रेणु के यहां नहीं है जैसा प्रेमचंद की कहानियों में सहज ही उपलब्ध है। उन्ही गांवों से उठाए गए रेणु के चरित्र आकर्षण पैदा करते हैं।गुदगुदाते हैं। रेणु के यहां स्थानीयता का रागरंग एक सम्मोहक और रोमानी वातावरण निर्मित करता है। भारतीय गांवों की मुकम्मल तस्वीर बिना इन दोनों रचनाकारों को मिलाकर नहीं बनती है।

हजारों साल की अपनी विकासयात्रा में नाना दुख और पीड़ाओं के बीच मनुष्यता ने प्रेम और श्रृंगार के गीत भी ख़ूब जी भर गाये हैं, जिसकी आत्मीय छाया ने प्रकृति को हरा-भरा कर दिया है। क्या यह नयी-नयी मिली आजादी के सपनों का उल्लास या नेहरू युग के सम्मोहन का असर भर है या एक समर्थ रचनाकार के अंतर्मन की बनावट ही प्रेमचंद से बिल्कुल भिन्न है। मैं यहां कई सारी कहानियों का उल्लेख करना चाहती हूं जो फिलहाल मुझे एक साथ याद आ रही हैं। पंचलैट, रसप्रिया, तीसरी कसम,

लालपान की बेगम। आप इन कहानियों के परिवेश और इस परिवेश में चरित्रों के जीवन को देखिए । एक सांस्कृतिक रंग में जीवन के उल्लास का रोमांटिक आस्वाद आपको हर जगह दिखाई देता है। अभावों से भरे पूरे यथार्थ का पसरा हुआ ऐसा रोना और सिर्फ रोना ही नहीं है कि आप वहां से पलायन ही कर जाएं। रेणु के गांव और वहां के चरित्र उनका जीवन, जैसा भी है, वे उसे जी भर कर जीने में विश्वास करते है। इसी रूप रंग में वे हमें आकर्षित भी करते हैं।

'एक आदिम रात्रि की महक' लावारिश बचपन से भरे अनाथ लड़के करमा की कहानी है। ट्रेन के डब्बे में किसी के द्वारा छोड़ दिया गया शिशु करमा स्टेशन को ही अपना गांव और घर बना लेता है । सीधे सादे ढंग से बताई गई इस बात में भी कितनी करुणा है। लेकिन खूबी यह कि करमा किसी किस्म के करुणा की कोई नुमाइश नहीं करता है । उसका जीवन ही फकीरी का ठाट है। उसकी स्मृतियों में भी मां-बाप या कोई सगा रिश्ता नहीं है, लेकिन घोष बाबू से सारी आत्मीयता और लगाव के बावजूद वह उन का साथ इसलिए छोड़ देता क्योंकि वह उसे "मादर...." की गाली देते थे। घोष बाबू की सामान्य बोलचाल की भाषा ही गाली से रची बसी थी। जैसा कि ऊपर बताया गया है, लावारिस करमा के जीवन में कोई अपना सगा रिश्ता नहीं है। वह एक साथ राष्ट्र, जाति, धर्म से परे एक मुकम्मल मनुष्य है। रिश्ते के नाम पर उसके जीवन में पहली और आखिरी बार सिर्फ गोपाल बाबू ही आये थे। उसके लिए मां बाप सब कुछ गोपाल बाबू ही थे। वह वजह-बेवजह जब तब उन्हें ही याद करता है -

'एक आदिम रात्रि की महक' लावारिश बचपन से भरे अनाथ लड़के करमा की कहानी है। ट्रेन के डब्बे में किसी के द्वारा छोड़ दिया गया शिशु करमा स्टेशन को ही अपना गांव और घर बना लेता है । सीधे सादे ढंग से बताई गई इस बात में भी कितनी करुणा है । लेकिन खूबी यह कि करमा किसी किस्म के करुणा की कोई नुमाइश नही करता है । उसका जीवन ही फकीरी का ठाट है।

"जा रे गोपाल बाबू! वैसा बाबू अब कहाँ मिले? करमा का माय-बाप, भाय-बहिन, कुल-परिवार जो बूझिए - सब एक गोपाल बाबू! ...बिना 'बिलटी-रसीद' का लावारिस माल था, करमा। रेलवे अस्पताल से छुड़ा कर अपने साथ रखा गोपाल बाबू ने। जहाँ जाते, करमा साथ जाता। जो खाते, करमा भी खाता। ...लेकिन आदमी की मति को क्या कहिए ! रिलिफिया काम छोड़ कर सालटानी काम में गए। फिर, एक दिन शादी कर बैठे। ...बौमा ...गोपाल बाबू की 'फैमली' - राम-हो-राम! वह औरत थी? साच्छात चुड़ैल! .."

ऐसी थी गोपाल बाबू की वह फेमिली बौमा- "एक ही साल में गोपाल बाबू को 'हाड़-गोड़' सहित चबा कर खा गई, वह जनाना! फूल-जैसे सुकुमार गोपाल बाबू! जिंदगी में पहली बार फूट-फूट कर रोया था, करमा।"

हीरामन की तरह करमा भी तबसे एक अघोषित कसम खा लेता है कि वह अबसे कभी ऐसे बाबू लोगों के साथ नहीं रहेगा, जिनकी फेमिली है। बौमा की वजह से उसके मन में सदा सदा के लिए ऐसी स्त्री विरक्ति हुई कि करमा स्टेशन के जनाना वार्ड की ओर भी न जाता।

"जनाना नाम से ही करमा को उबकाई आने लगती है।"

वह स्टेशन पर रहने वाले कुछ रिलीफिया बाबू लोगों के साथ रहता है। नौकर बनकर नहीं। वह उन लोगों के साथ उनका काम करता है, लेकिन किसी से पगार नहीं लेता। जैसे घर में काम बंटे होते हैं, किसी को कोई पगार नहीं मिलती। करमा के अब तक के जीवन में कई सारे घर बने, लेकिन किसी घर में उसका कोई हिस्सा न था। वर्ग और वर्ण विभाजन के दायरे में कुछ वास्तविक और कुछ बनावटी शोषण का आख्यान रचते-तलाशते

कथाकारों और उनके आलोचकों को करमा का ऐसा होना एक मुश्किल जरूर खड़ी करता है। देखा जाय तो करमा का समूचा जीवन ही एक मार्मिक कहानी है। एक ऐसा यथार्थ जो उसे याद भी नहीं। जिसकी छाया भर बस एक बार दिखाई देती है- "हजार बार, लाख बार कोशिश करके भी अपने को रेल की पटरी से अलग नहीं कर सका, करमा। वह छटपटाया। चिल्लाया, मगर जरा भी टस-से-मस नहीं हुई उसकी देह। वह चिपका रहा। धड़धड़ाता हुआ इंजिन गरदन और पैरों को काटता हुआ चला गया। ...लाइन के एक ओर उसका सिर लुढ़का हुआ पड़ा था, दूसरी ओर दोनों पैर छिटके हुए! उसने जल्दी से अपने कटे हुए पैरों को बटोरा- अरे, यह तो एंटोनी 'गाट' साहब के बरसाती जूते का जोड़ा है! गम-बूट!...उसका सिर क्या हुआ?..धेत, धेत! ससुरा नाक-कान बचा रहा...!"

विडंबना अगर किसी सामाजिक संरचना में हो तो संघर्ष के लिए रास्ता भी बनता है, लेकिन नियति की उसी विडंबना से अगर आपका वजूद ही बना हो तो क्या करमा ? क्या कबीर ?

घोष बाबू से अलग होकर करमा राम बाबू के साथ रहने लगा। इश्किया मिज़ाज़ वाले राम बाबू पूरे दिन लुगाई लोगों के जुगाड़ में रहते- "कभी मालगोदाम की ओर तो कभी जनाना मुसाफिरखाना में, तो कभी जनाना-पैखाना में...छिः छिः...जहाँ जाते छुछुआते रहते- 'क्या जी, असल-माल-वाल का कोई जोगाड़ जंतर नहीं लगेगा?'..."

अब करमा की क्या औकात जो उन्हें मना करता, लेकिन रामबाबू का इस तरह औरतों के पीछे-पीछे छिछियाना उसे अच्छा न लगता- "आखिर वही हुआ जो करमा ने कहा था- 'माल' ही उनका 'काल' हुआ। पिछले साल, जोगबनी-लाइन में एक नेपाली ने खुकरी से दो टुकड़ा काट कर रख दिया। और उड़ाओ माल! ...जैसी अपनी इज्जत वैसी पराई !"

जैसे उनकी स्त्री इच्छा में प्रेम का कोई तत्व नहीं था, उसी तरह उनकी मृत्यु में कोई करुणा नहीं। कोई ट्रेजडी नहीं। लेकिन करमा अपनी नियति और ट्रेजडी का मनमौजी फक्कड़ राग गाते-गुनगुनाते पूजेगरी सिंघ जी के साथ रहने लगता है। यहां तो अजीब मुश्किल है- "जहाँ कुछ छुओ कि हूँहूँहूँ-हाँहाँहाँ-अरेरेरे-छू दिया न? ...ऐसे छुतहा आदमी को रेल-कंपनी में आने की क्या जरुरत? ...सिंघ जी का साथ नहीं निभ सका।"

इस स्टेशन से उस स्टेशन तक तरह-तरह के लोगों के साथ रहते हुए पांचवे ठिकाने के रूप में गोपाल बाबू के बाद करमा को अबकी बार दरियादिल आदमी साहू बाबू मिले। दिन में भी दारू चढ़ाए रहते। एक दिन इसी नशे की हालत में गाड़ी को गलत पास दे दिया। भारी एक्सीडेंट हो गया। चारो ओर कुहराम मच गया। एक्सीडेंट की बात सुनकर साहू बाबू ने एक बोतल और चढ़ा ली। डॉक्टर ने उनका दिमाग खराब होने की रिपोर्ट दी तब जाकर नौकरी तो खत्म हो गयी लेकिन साहू बाबू बच गए। इसके बाद अभी कुछ दिन पहले ही छठे बाबू के साथ करमा इस आदमपुर स्टेशन पर आया है।

"बस, नाम ही आदमपुरा है- आमदनी नदारद। सात दिन में दो टिकट कटे हैं और सिर्फ पाँच पासिंजर उतरे हैं, तिसमें दो बिना टिकट के। ...इतने दिन के बाद पंद्रह बोरा बैंगन उस दिन बुक हुआ। पंद्रह बैंगन दे कर ही काम बना लिया।"

इस नये-नये बने स्टेशन की दीवालों से चूने और वार्निश की तीखी गंध "गमछे से नथुने को साफ करते हुए करमा ने कहा- 'यहाँ नींद कभी नहीं आएगी, मैं जानता था, बाबू!'

इसी अधजगी नींद वाली रात को स्मृतियों में करमा की जिंदगी की परतें एक- एक कर खुलती जाती हैं। आसपास के ढेर सारे स्टेशन, ढेर सारे चरित्र जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, और कुछ जो बिना किसी कथानक के करमा के आसपास से गुजर जाते हैं। निताय बाबू उसे कोरमा कहते थे। असगर बाबू करम करम। कुली कुल के मस्तान बाबा के निर्गुण आदि-आदि। नींद न आने की दशा में स्मृतियों का आना- जाना लगा रहता है। इसी बीच- "कुतवा फिर गश्त लगाता हुआ आया। यह कातिक का महीना है न! ससुरा पस्त हो

कर आया है। हाँफ रहा है।...ले, तू भी यहीं सोएगा? ऊँह! साले की देह की गंध यहाँ तक आती है- धेत! धेत!" इसी बीच करमा को नींद आती है और उसकी जिंदगी का यथार्थ सपने की शक्ल में दिखाई देता है। वह देखता है कि वह ट्रेन की पटरी पर कटा पड़ा है। पैर अलग, सिर अलग। अपने कटे हुए पैर को बटोर रहा है तभी एंटोनी गॉट साहब का बरसाती जूता वहीं पड़ा हुआ दिख जाता है।

आदमपुरा स्टेशन की पहली रात को देखा हुआ करमा का यह पहला सपना ही उसके जीवन यथार्थ की फैंटेसी है। अभी दूसरा सपना बाकी है। इन्हीं दोनों सपनों के बीच स्मृतियों के सहारे उसके जीवन यथार्थ की यह पूरी कहानी रची गई है। एक दिन जब वह स्टेशन के पार खेतों के रास्ते आगे गांव की ओर जाता है- "धनखेतों से गुजरनेवाली पगडंडी पकड़ कर करमा चल रहा है। धान की बालियाँ अभी फूट कर निकली नहीं हैं।"

"इधर, 'हथिया-नच्छत्तर अच्छा 'झरा' था। खेतों में अभी भी पानी लगा हुआ है।.... है। मछली?...पानी में माँगुर मछलियों को देख कर करमा की देह अपने-आप बँध गई। वह साँस रोक कर चुपचाप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे खेत की मेंड़ पर चला गया। मछलियाँ छलमलाईं।" गांव की ओर जाते हुए करमा देखता है- झलमलाती मछलियां, धान की बालियां अभी फूट कर नहीं निकली हैं।

हथिया नक्षत्र आदि का तारतम्य तो एकदम दुरुस्त है, पर अभी दो- चार दिन ही पहले कुत्ते वाले प्रसंग रेणु जी ने बताया था कि महीना कातिक का है। फिर कातिक के महीने में धान की बालियों का अभी-अभी फूटा होना, हथिया नक्षत्र आदि का कोई तुक समझ में नहीं आता। फिल्मी दृश्य विधानों में तो सब कुछ सम्भव है। वहां किसी की कोई जिम्मेदारी और जवाबदेही भी न है, लेकिन रेणु तो आंचलिक कथाकार हैं। पूर्णिया के अंचल में छत्तीसगढ़ी लोकगीत की धुन कैसे संभव कर सकेंगे। अगर मन और मौसम की रुमानियत दिखाने के लिए धान की दूधइली बालियां, हथिया नक्षत्र आदि ही जरूरी हों, तब तो कोई बात नहीं, वरना पके धान की महक से भी गांवों में फैले-फूले भरपूर रोमांस को दिखा सकते थे। अगर एक रात पहले कुत्ते के प्रसंग में महीना कातिक का था तो मात्र दो-तीन दिन बाद ही सावन भादो की नमी कहां से आ जायेगी? अस्सी की स्पीड में भागती गाड़ी में अचानक बैक गीयर ! अगर आंचलिक कथाकार की कहानी में भी मौसम की लय न हो तो स्मृतियों का कोलाज करमा के डरावने सपने की तरह कट-फट कर छितरा जाएगा।

आगे गांव में करमा को सुरसतिया दिख जाती है। हीरामन के हीराबाई की ही तरह। दूधइली बालियों में संकेत पहले ही मिलने लगा था-

"एक दिन फिर आना।'

'अपना ही घर समझना!'

लौटते समय करमा को लगा, तीन जोड़ी आँखें उसकी पीठ पर लगी हुई हैं। आँखें नहीं - डिसटन-सिंगल, होम-सिंगल और पैट सिंगल की लाल गोल-गोल रोशनी!"

करमा अपने स्टेशन पर लौट आता है। उसी रात को आशंकाओं से लिपटी उम्मीदें कुनमुनाने लगी हैं- "न ...आज रात भी करमा को नींद नहीं आएगी। नहीं, अब वार्निश-चुने की गंध नहीं लगती।..."

असल बात दूसरी और बहुत गहरी है- "...करमा क्या करे? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। ...'एक दिन फिर आना। अपना ही घर समझना। ...कुटुम है..."

इसी परिप्रेक्ष्य में कहानी का मर्म और शीर्षक का अर्थ खुलता जाता है। रात के एकांत में रची बसी महक जितनी आदिम और आकर्षक है, गोपाल बाबू की चुड़ैल फेमिली बौमा के अनुभव करमा के दूसरे वाले सपने में एक साथ मूर्तमान हो उठते हैं- "फैमिली-क्वाटर से एक औरत चिल्लाने लगी- 'चो-ओ-ओ-र!' वह भागा। एक इंजिन उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है। ...मगहिया डोम की छौंड़ी? ...तंबू में वह छिप गया। ...सरसतिया खिलखिला कर हँसती है। उसके झबरे केश, बेनहाई हुई देह की गंध, करमा के प्राण में समा गई। ...वह डर कर

सरसतिया की गोद में ...नहीं, उसकी बूढ़ी माँ की गोद में अपना मुँह छिपाता है। ...रेल और जहाज के भोंपे एक साथ बजते हैं। सिंगल की लाल-लाल रोशनी...।"

प्रेमचंद के पात्र हंसते खेलते किसी भी कहानी के कथानक में दाखिल होते हैं और धीरे- धीरे टूटते जाते है। उनके टूटने विखरने में औपनिवेशिक दौर के भारतीय गांवों की कहानी होती है। किसानों के रोजमर्रा की चिर परिचित त्रासदी होती है। वहां एक ऐसा यथार्थ दिखाई देता है जिसमें करुणा होती है। लेकिन रेणु के वही गांव अपने आंचलिक वेश- विन्यास के साथ तरह तरह की चुहलबाजी से भरे इतराते- इठलाते दिखाई देते हैं। अपने अभाव और उपेक्षा के बावजूद एक नैसर्गिक संगीतात्मकता से भरा सम्मोहन पैदा करते हैं। अगर प्रेमचंद के यहां सामाजिक संरचना की विडम्बनाएं और विसंगतियां हैं तो रेणु के यहां मानव मन की अनेकानेक भाव छवियाँ हैं। एक जैसे ही यथार्थ के भीतर जीवन को देखने का अलग अलग नजरिया है। श्रम और संघर्ष के बीच जीवन की करुणा ही नहीं, मानवता का उदात्त स्वर और संगीत भी गूंजता है। रेणु इसी संगीतात्मकता के कथाकार हैं। स्व

लघुकथा

समय का फेर, उम्मीद का दीया

मनीषा गिरी "मनमुग्ध"

आज गुड़िया को डॉक्टर साहब ने जवाब दे दिए, "आप बस दो - तीन महीने की मेहमान है बस"

गुड़िया को सांस की गंभीर बीमारी हो गई थी समय पर आपरेशन नहीं हो पाया, अब वह ज्यादा बढ़ गया है। दवा भी बेअसर थी, फिर भी डाक्टर कुछ दवा लिखे और परहेज बता दिए।

गुड़िया अकेली थी। छोटा सा बंगला और बड़ा सा लॉन था।

जहां वह अकेली रहती थी और घरेलू सभी कार्य अपने आप कर लेती थी। काम की उलझनों में उलझे हुए दिन कब बीत जाता पता भी नहीं चलता था।

डाक्टर की बात को उन्होंने किसी से नहीं किया और ना हताश हुई, घर आकर पूरे लॉन को खोदने लगी। फिर पूरे जगह तरतीब से किस्म किस्म पड़े-पौधे लगाए, किनारे तरफ अमरुद, कटहल, बेलपत्र और नीम के पौधे रोप दिए। बेलपत्र के पौधे के साथ उसका प्रेम जीवंत था क्योंकि उसके प्रेमी ने भी उसके लिए बेलपत्र का पौधा लगाया था, क्योंकि एक कहावत सुनी होगी कि व्यक्ति आता जाता रहता है परन्तु उसका प्रेम और नाम दुनिया में हमेशा जीवित रखती लोगों के जरिए। वहीं नीम के पड़े पर सावन में झूला झूलना बहुत पसंद था, कटहल के साथ उसकी हॉस्टल की यादें जुड़ी थी जो हमेशा उसे याद आती तो उसके चेहरे पर मुस्कान आ जाती थी। आज भी वो उन दिनों को भूली नहीं है।

अपने हाथ से अपनी रुचि के भोजन बनाते और सुबह शाम लॉन में अपना समय बिताते, हिन्दी साहित्य की विद्वान होने के कारण उन्हें साहित्य से अथक प्रेम था। वह जब कुछ भी कर और मन में भाव आते तो उन्हें लिख लेती, उनकी डायरी में अनेकों कविताएं और भाव मन के अंदर दूर तक फैला हुआ सन्नाटा और प्रेम उकेरती है। घर में से किताबें और उनका एह सास कभी नहीं जाएगा। शाम होते ही दोस्तों की महफिल लगा खूब ठिठोली करती, फिर संगीत लगा के गुनगुनाते हुए खाना बना कर खाती और बेफिक्र सो जाती।

समय निकलता गया, उनके लॉन की चर्चा घर-घर होने लगी, सब देखने आते कई प्रश्न पूछते...वो बस मुस्कुरा देती।

एक दिन वही डाक्टर अपने परिवार के साथ लॉन देखने आये, वह गुड़िया को देखकर दंग रह गये क्योंकि वह गुड़िया से दो साल पूर्व न बचने की बात की थी। परंतु आज दो साल हो गये गुड़िया निरोग, स्वस्थ व मस्त लग रही थी। स्व